खोए हुए
बुद्ध की खोज

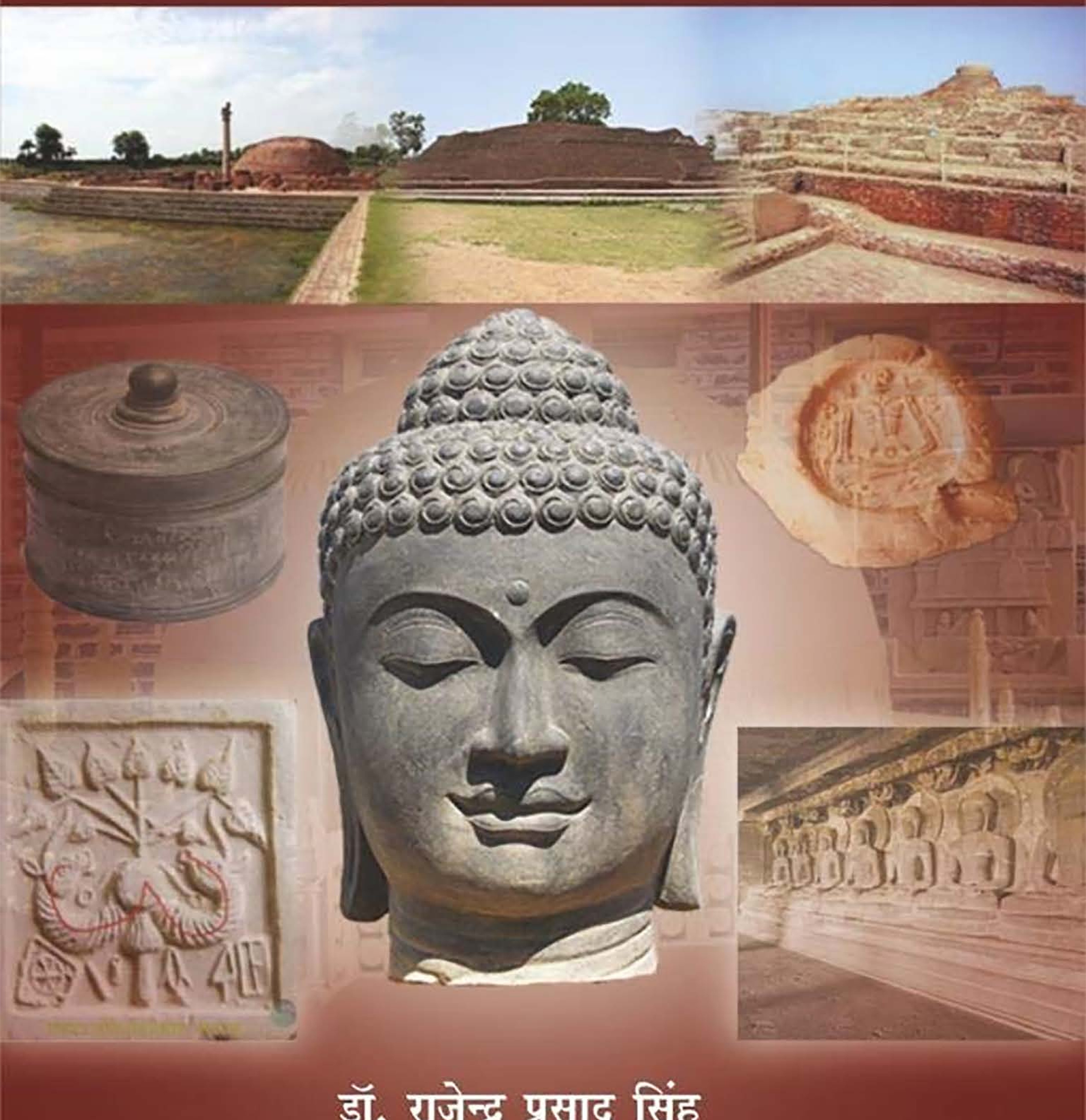

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह

खोए हुए बुद्ध की खोज

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इलेक्ट्रॉनिक या किसी अन्य माध्यम द्वारा पुन: प्राप्ति समेत किसी भी रूप में प्रतिलिपिकृत, अनुवादित, संगृहीत नहीं किया जा सकता है और न ही किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम द्वारा से प्रसारित किया जा सकता है।

ISBN: 978-93-87809-19-2

कॉपीराइट 2019, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक एवं मुद्रक : कौटिल्य बुक्स

आवरण-चित्र : कौटिल्य स्टूडियो

Kautilya

KAUTILYA BOOKS

www.kautilya.in

CONTENTS

Title Page

ISBN Page

Bhumika

Lekhak Ke Bare Mein

1. Buddha Ka Vaishvik Pariprekshya

2. Bauddha Sthalon Ka Pariprekshya

3. Bauddha Abhilekhon Ka Pariprekshya

4. Buddha Ka Naya Pariprekshya

5. Parishishti

भूमिका

“खोए हुए बुद्ध की खोज” कोई स्वतंत्र और मुकम्मल पुस्तक नहीं है, बल्कि फेसबुक पर लिखी गई टिप्पणियों का संग्रह है। ये टिप्पणियाँ सूत्रात्मक रूप में हैं। इन्हें विस्तारित किया जा सकता है। शायद इन्हें विस्तारित किए जाने पर गौतम बुद्ध का अनछुआ इतिहास सामने आए। मिसाल के तौर पर, गौतम बुद्ध का नाम सिद्धार्थ नहीं था।

इतिहासकार डी.डी. कोसंबी ने लिखा है कि गौतम बुद्ध का नाम सिद्धार्थ नहीं था। यह नाम बाद में उनके अनुयायियों ने जोड़ दिया है। ऐसे भी सिद्धार्थ का पूरा ध्वनिशास्त्र संस्कृत का है। इसलिए गौतम बुद्ध का वास्तविक नाम सिद्धार्थ संभव नहीं है। गौतम बुद्ध का वास्तविक नाम सुकिति जान पड़ता है। इसलिए कि उनके

निर्वाण के फौरन बाद कपिलवस्तु के शाक्य भाई-बहनों ने उनके भस्मावशेष पर स्तूप का निर्माण कराया था। वह स्तूप आज भी पिपरहवा स्तूप के नाम से असली कपिलवस्तु में मौजूद है।

पिपरहवा स्तूप के अस्थि-कलश की गर्दन पर एक अभिलेख लिखा है। यह कलश पत्थर का है। अभिलेख की लिपि ब्राह्मी और भाषा प्राकृत है।

अभिलेख पर लिखा है कि सुकिति भतिनं स भगिनिकन स पुतदलन इयं सलिल निधाने बुधस भगवते सकियन। इसका हिंदी में अर्थ हुआ कि सुकिति (गौतम बुद्ध) के शाक्य भाइयों, बहनों, पुत्रों आदि ने भगवत बुद्ध का यह शरीर-निधान (स्तूप) बनवाया। यह स्वाभाविक है कि गाँव-घर के भाई-कुटुंब को भगवत बुद्ध को उनके वास्तविक नाम कहने और लिखने का अधिकार है।

जैसा कि हमें ज्ञात होता है कि बुद्ध के निर्वाण के फौरन बाद पिपरहवा में स्तूप बनाया जाता है। साबित-सी बात है कि स्तूप बनाने की परंपरा पहले से थी। तभी

गौतम बुद्ध के निर्वाण के फौरन बाद स्तूप का निर्माण कराया जाता है। कोई भी शिल्प–कला रातों–रात पैदा नहीं होती है। स्तूप कला का भी बाकायदा विकास हुआ है। मिट्टी का स्तूप...पत्थर का स्तूप...ईंट का स्तूप...संगमरमर का स्तूप...गोल स्तूप...चैकोर स्तूप...सीढ़ीदार स्तूप...बिना सीढ़ी का स्तूप...इन अलग–अलग प्रकार के सैकड़ों स्तूपों का काल–निर्धारण फिर से किए जाने की जरूरत है।

बौद्ध सभ्यता और गौतम बुद्ध की अनेक कड़ियाँ इतिहास में आज भी गुम हैं। इन्हें संजोये जाने की आवश्यकता है।

—डॉ. राजेन्द्रप्रसाद सिंह

लेखक के बारे में

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह एक ऐसे शख्स हैं, जिन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य को अब तक देखने–परखने और मूल्यांकन करने की जो पद्धति और प्रक्रिया थी, उसे बिलकुल ही उलट–पुलट दिया। उन्होंने साहित्य को देखने–समझने के सामंती प्रतिमानों को तोड़–फोड़कर बिलकुल नवीन, जनतांत्रिक, पारदर्शी व सृजनात्मक प्रतिमान तैयार किए हैंय जहां से साहित्य को आसानी से आमजन की नजर से देखा व समझा जा सकता है। उनका लेखन पूरी तरह से आमजन के लिए समर्पित और उसके पक्ष में खड़ा है। राजेन्द्र यादव के बाद हिन्दी आलोचना को उन्होंने शोषितों की नजर से देखने की न सिर्फ वकालत की, बल्कि ऐसा करके दिखाया भी। उनकी इसी खूबी ने उनको जहां जनप्रिय बनाया, तो दूसरी ओर अपनी इसी खूबी के चलते, वे बहुत हद तक सामंती सोच व घरानों से ताल्लुक रखने वाले लेखकों की नजर में हमेशा गड़ते रहे, उनके दिल में कांटों की तरह चुभते रहे।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने हिन्दी के कई गुमनाम लेखकों को मुख्यधारा से जोड़ने का काम किया, उनकी रचनाओं से दुनिया को अवगत कराने का काम किया, जिनको आगे लाने से तथाकथित सभ्य जन कतराते रहे। ऐसे लेखकों में 'व्यंग्य बोध के विराट कवि कुंजन', 'जनता की याददाश्त में जीवित कवि परगन राम', वयस्क श्रृंगार के अकुंठ कवि जगरदेव', 'सामंतों की तनी तोपों के बीच मुसहर कवि बिहारी राम', 'भोजपुरी के तथाकथित नक्सली कवि नारायण महतो' और 'विंध्याचल घाटी के घुमंतू जनकवि बावला' मुख्य हैं, जिनके बारे में सविस्तार जानकारी उन्होंने 'आधुनिक भोजपुरी के दलित कवि और काव्य' (2010) पुस्तक में दी है। उन्होंने इन कवियों के वैशिष्ट्य व प्रासंगिकता के कारणों को रेखांकित किया है। हिन्दी में ऐसे लेखक बहुत कम मिलेंगे, जो ईमानदारी

से हाशिए के उन रचनाकारों की पैरवी करने के लिए सदैव तत्पर, बेचैन और विह्वल रहे हैंय जो वाकई योग्य व दृष्टि संपन्न रचनाकार होने के बावजूद उपेक्षित रहे।
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने इतना ही नहीं किया, उन्होंने हिन्दी साहित्य को मजबूत व व्यापक बनाने वाले उन रचनाकारों से भी हमें अवगत कराया, जिनसे 'सुसंस्कृत' लोग आंख चुराते आए थे। चाहे वे भोजपुरी भाषी टेकमन राम, कुंजन कवि, घुमंतू कवि बावला हों या चाहे हिन्दी के महाराज सिंह भारती, राम स्वरूप वर्मा, आर.एल. चंदापुरी, निर्गुण सिंह 'खाली' इत्यादि हों। डॉ. सिंह यह साफ लिखते हैं कि—''हिन्दी के महाकवि सूरदास जाति के अहीर थे।'' (फारवर्ड प्रेस, अप्रैल 2016 पृ–49) तथा अपने कथ्य को तथ्यपरक बनाने के लिए वे सबूत के तौर पर सूरदास के पिता का नाम 'रामदास ग्वाल' बताते हैं। इतना स्पष्ट हिन्दी के बहुत कम लेखक बोलते या लिखते हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह साहित्य में प्रतिरक्षात्मकता के विरोधी रहे हैं। यह बात उनकी पुस्तकों से भी झलकती है और स्पष्ट होती है––बोली–वाणी से भी और सोशल मीडिया के युग में फेसबुक से भी। उनकी इसी मुखरता व स्पष्टता का प्रमाण है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य को 'ओबीसी साहित्य विमर्श' (2014) का कांसेप्ट दिया और लिखा कि—''कई इतिहासकारों ने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि प्राचीन भारत में ओबीसी के लोगों में अपनी गिरी हुई दशा से निकलकर उन्नत होने का प्रयास नहीं दिखाई पड़ता है। कुछ ऐसे भी हैं, जो यह मानते हैं कि भारत में ओबीसी नवजागरण नाम की कोई चीज नहीं है, किंतु, ऐसे विद्वानों के मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि भारतीय इतिहास में कई चरणों एवं कई रूपों में ओबीसी नवजागरण उपलब्ध है। कहना न होगा कि छठी शताब्दी ई.पू. में हुए नवीन बौद्धिक आंदोलनों में से प्राय: सभी आंदोलनों का स्वरूप ओबीसी नवजागरण का है।'' (पृ–09) इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी के वैसे लेखक–जिनका सामाजिक सरोकार किसान, शिल्पी व कमेरे वर्ग से था और उनकी रचनाओं में समाज का दर्द, पीड़ा बेचैनी व सौंदर्य खुलकर सामने आए थे—वे उपेक्षित रहे। ऐसे रचनाकारों के चलते हिन्दी साहित्य पहले से ज्यादा लोकतांत्रिक हुआ।

भोजपुरी भाषा भी पंडितों की वजह कभी सिर ऊंचा करके खड़ी नहीं हो पाई,क्योंकि, उसका कोई महत्व समझा ही नहीं गया और न ही उसकी ताकत से जनता को किसी ने रू–ब–रू कराया। हिन्दी की संस्कृत से उत्पत्ति मानने वालों का तो कहना ही नहीं।

उनके लिए भोजपुरी 'गंवारु' भाषा थी या कहें कि बोली थी। भिखारी ठाकुर कवि न होकर 'नाई' व 'नचनिया' थे। भोजपुरी का अपना कोई व्याकरण नहीं था और न ही कोई भाषा-शास्त्र, ऐसी स्थिति में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 'भोजपुरी के भाषा-शास्त्र' (2006) तथा 'भोजपुरी भाषा, व्याकरण आ रचना' (2011) लिखकर भोजपुरी को कलंक से उबारा।

इसी तरह डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने हिन्दी समाज को और कई अनोखे कार्यों, खोजों, अवधारणाओं, घटनाओं व स्थितियों से रु-ब-रु करवाया, जिस पर जनता सहजता के साथ यकीन नहीं कर सकती थी। उनमें सुल्ताना डाकू की कथा हो या गुंडा धुर का इतिहास या गंगू तेली के साथ भद्दा मजाक या गुरु घंटाल का रहस्य या डाकू शब्द की उत्पत्ति संबंधी राय, इन सब पर अलग तरह से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने न सिर्फ सोचा, बल्कि सप्रमाण तथ्यों की पुष्टि करते हुए उसके उचित, सही व तथ्यपरक इतिहास की खोज की। 'द्वेष की धूल तले दबे बहुजन नायक' आलेख खूब चाव से बहुजनों के बीच पढ़ा गया, इसलिए नहीं कि इसमें सुल्ताना डाकू या गुंडा धुर का सिर्फ इतिहास था, बल्कि इसलिए भी कि इस लेखक ने सवर्ण व अंग्रेजी मानसिकता की पोल खोल दी थी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने जब 'हिन्दी साहित्य का सबाल्टर्न इतिहास' (2009) लिखा, तो हिन्दी जनमानस व साहित्यकों को यह यकीन ही नहीं हुआ कि हिन्दी साहित्य का कोई सबाल्टर्न इतिहास भी हो सकता है। इस पुस्तक में सहित्यकारों की जाति चोरी का मामला जब उजागर हुआ, तब लोगों ने तले उंगली दबा ली। अब उनके लिए मछिंदरनाथ न तो भृगुवंशीय ब्राह्मण थे, न शबरपा 'क्षत्रिय'! शबरपा भील थे, तो मछिंदरनाथ मछुआरे।

ठीक इसी तरह डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने जब ओबीसी की अवधारणा पेश की, तो हिन्दी पट्टी में बहुत शोर-शराबा हुआ। नामवर सिंह का कहना था कि साहित्य में आरक्षण ठीक नहीं। वहीं, राजेन्द्र यादव और संजीव जैसे ओबीसी के साहित्यकार भी इस अवधारणा से सहमत नहीं थे। उनकी नजर में ओबीसी के साहित्य जैसी कोई चीज नहीं थी और न ही उसका कोई सौंदर्य-शास्त्र है, लेकिन धीरे-धीरे लोग मान गए कि ओबीसी

साहित्य जैसी कोई चीज भी है और उसका सौंदर्य-शास्त्र भी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने एक-एक कर तथ्यों की पड़ताल शुरू की और ओबीसी साहित्य के दर्शन व सौंदर्य से हिन्दी जनमानस को परिचित कराया। ई.पू. छठी शताब्दी से लेकर अब तक ओबीसी की एक सशक्त परंपरा रही है, इस तथ्य से जब उन्होंने अवगत कराया, तब जाकर लोगों ने ओबीसी साहित्य की अवधारणा को स्वीकार किया। हिन्दी साहित्य में उसे मान्यता मिली और यही भारत के सबसे बड़े वर्ग समूह का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य बन गया। इससे द्विज साहित्य को समझने-बूझने में जहां सहूलियतें हुईं, वहीं सामंती चरित्र का ताना-बाना स्पष्ट हुआ। जो वर्ग अब तक साहित्य से जुदा थे, वे इससे जुड़े।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने जहां भाषा और साहित्य में अपने तर्क, संवेदना व विचार का लोहा मनवायाय वहीं वे दर्शन और इतिहास में भी उपेक्षित, दबा दी गई अन्य जरूरी चीजों को भी सामने लाए। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह से पूर्व लोग यहीं मानते थे कि दुनिया में कोई बुद्ध हुए, तो वे सिर्फ शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ही थे। इसके अलावा कोई और बुद्ध नहीं थे। 'खोए हुए बुद्ध की खोज' ने यह बात भी साबित करके रख दी है कि भारत में एक नहीं अनेक बुद्ध थे। भारत में हड़प्पा की जो संस्कृति थी, वह भी बुद्ध की संस्कृति थी और भारत विश्वगुरु बना, तो वह बुद्ध-दर्शन के बदौलत ही बना।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने बिहार और उत्तर-प्रदेश के कई इलाकों में जाकर नई ऐतिहासिक खोजों की तरफ इतिहासकारों, पुरातत्वविदों को ध्यान आकर्षित कराया। साथ ही, उन्होंने यह बताने की कोशिश भी की कि कई ऐसे रहस्य अभी शेष हैं, जिनसे पर्दा उठने के पश्चात अब तक इतिहास के बारे में जो अवधारणाएं बनाई गई हैं या निर्मित की गई हैं, सब झूठी लगने लगेंगी। जब पहली दफा संस्कृत भाषा को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने कृत्रिम भाषा के रूप में चिह्नित किया था, तो दुनिया को यह पागलपन लगा था और यह भी पागलपन लगा था कि संस्कृत से पुरानी भाषा पाली है। लेकिन तथ्यों, तर्कों के आगे संवेदना व आस्था भला कब तक टिकेगी! कुछ ऐसा ही संस्कृत भाषा के साथ हुआ। संस्कृत अब सभी भाषाओं की जननी नहीं रह गई और न ही सबसे उन्नत व

प्राचीन। इस आग से अगर हिन्दी पट्टी का कोई साहित्यकार खेल सकता था, तो उनका नाम सिर्फ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह ही है।

––डॉ. हरेराम सिंह, पी–एच.डी.

बुद्ध का वैश्विक परिप्रेक्ष्य

1. गौतम बुद्ध ने "ध्यान" को विश्वव्यापी बनाया।

पालि में यह "झान" है। आचार्यों ने "झान" को परिष्कार "ध्यान" बनाया।
बुद्ध का यह "झान" जब चीन पहुँचा, तब वहाँ चियान/चान हुआ।
बुद्ध का यह "झान" जब कोरिया पहुँचा, तब वहाँ सिओन/ सानजान हुआ।
बुद्ध का यह "झान" जब वियतनाम पहुँचा, तब वहाँ थियेन हुआ।
बुद्ध का यह "झान" जब जापान पहुँचा, तब वहाँ जेन हुआ।
हर सोचने वाला जहन गौतम बुद्ध नहीं बन पाता!!!

(ध्यान मुद्रा में गौतम बुद्ध)

2. लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल!

बुद्ध अर्थात जागा हुआ, जानने वाला, ज्ञानी।
जो बुद्ध है वही संस्कृत में बुद् है अर्थात जागना, ज्ञान होना।

जो बुद्ध है वही रूसी में बुदीत् है अर्थात जागना।
जो बुद्ध है वही लिथुआनी में बुदति है अर्थात जानना।
जो बुद्ध है वही स्लोवानी में बुदिति है अर्थात जानना।
जो बुद्ध है, वही चेक और क्रोशियाई में ब्दीम है अर्थात जानना।
जो बुद्ध है वही अवेस्ता में बोदयति है अर्थात जानना, समझना।

3. गौतम बुद्ध का समय वैचारिक क्रांति का युग था, एक महत्वपूर्ण और रुचिकर तथ्य यह है कि यह वैचारिक क्रांति की लहर विश्व के कई देशों में लगभग एक ही समय में फैली हुई थी।

भारत में बुद्ध, ईरान में जरथुस्त्रा, चीन में कन्फ्यूशस, यूनान में हिराक्लिटस आदि ने अपने–अपने देशों में नवीन विचारों का नेतृत्व किया।

पड़ताल इस बात की भी होनी चाहिए कि बुद्ध की वैचारिक क्रांति के जनमने में वैश्विक माहौल का क्या योगदान रहा है।

4. अशोक के "धम्म" का अनुवाद "रिलिजन" (Religion) करना भाषा के दृष्टिकोण से गलत है।

खुद अशोक ने "धम्म" का अनुवाद ग्रीक में कराया है। यह अनुवाद उसके द्विभाषीय कंधार शिलालेख पर अंकित है। उसने "धम्म" का अनुवाद ग्रीक में "युसेबेइया" कराया है, जबकि ग्रीक में "रिलिजन" को "थ्रिस्किया" कहा जाता है।

"रिलिजन" में ईश्वर या देवताओं के अस्तित्व में विश्वास जरूरी होता है, जबकि "धम्म" या "युसेबेइया" में यह जरूरी नहीं है।

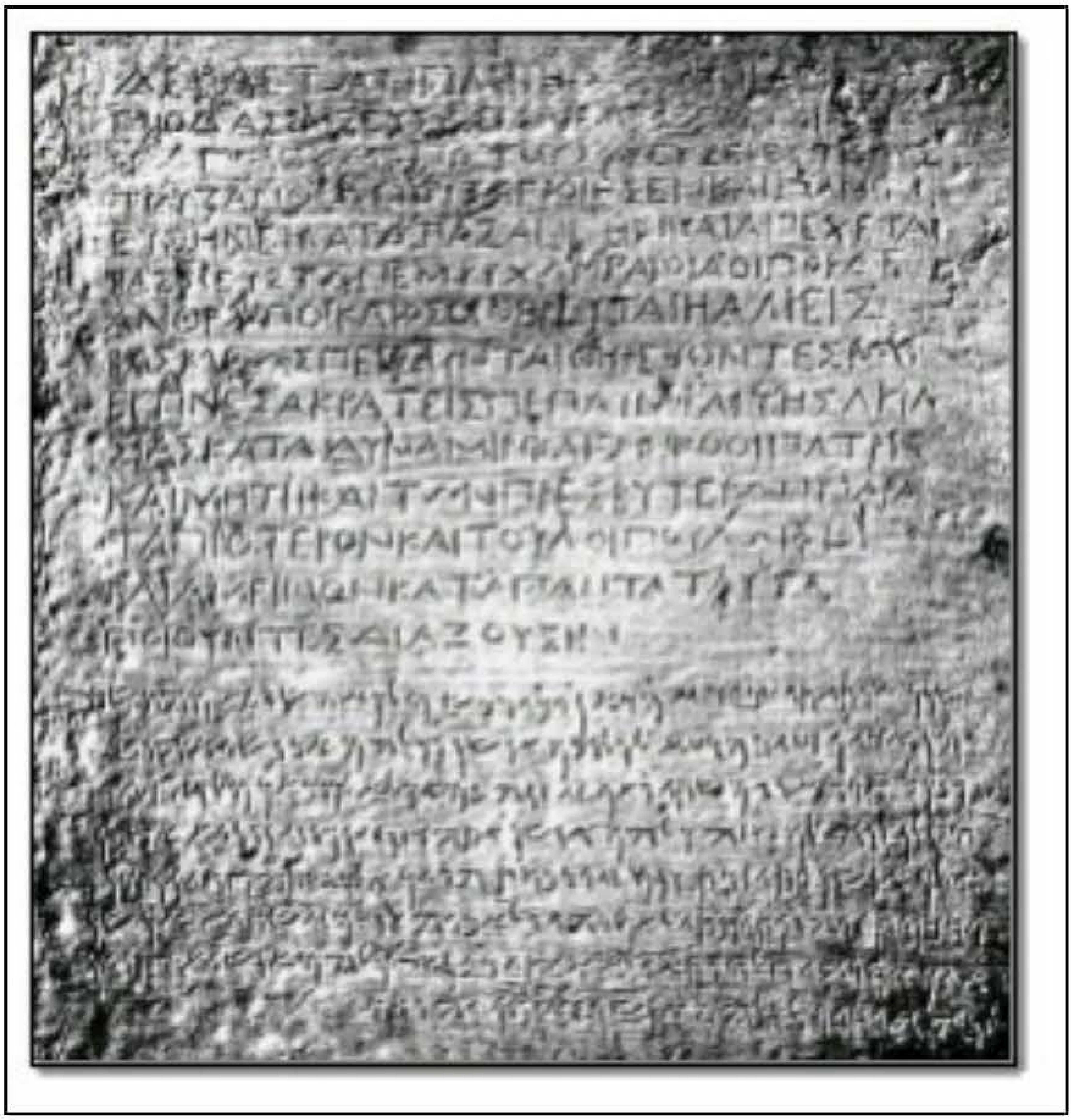

(द्विभाषीय कंधार शिलालेख)

5. “अशोक ईंट” क्या है? कई प्रकार की ईंटों में, एक विशेष मोटाई की ईंट सम्राट अशोक ने बौद्ध विहार के निर्माण के लिए चलाई थी। इसकी मोटाई 7.5 सेंमी हुआ करती थी। 7.5 सेंमी की मोटाई वाली ईंटें प्राक्-हड़प्पा और सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर कुषाण एवं गुप्त काल तक कहीं से नहीं मिलती हैं।

नालंदा बौद्ध विहार का साइट 1-A की ईंटों में “अशोक ईंट” भी हैं, जिसकी मोटाई 7.5 सेंमी है।

फिर भी इतिहासकार गुप्त काल का रट्टा मार रहे हैं।

(नालंदा बौद्ध विहार)

6. चीन का प्राचीन नाम चाहे जो भी रहा हो, ईसा से कोई दो सदी पूर्व इस देश का नाम चीन/चाइना प्रचलित हुआ। यह वही समय है, जब बुद्ध का झान (ध्यान) चीन पहुँचा, जिसे चीनी भाषा में चान/चिआन कहा जाता है।

क्या चान/चिआन से चीन/चाइना नाम का कोई संबंध है?

यदि नहीं भी तो दक्षिण–पूर्व एशिया को हिंद–चीन और मध्य एशिया के बड़े भू–भाग को चीनी–तुर्किस्तान क्यों कहा जाता है, जबकि प्राचीन काल में ये सब इलाके बौद्ध धर्म से जुड़े थे।

7. यदि भारत विश्वगुरु था तो गौतम बुद्ध के कारण था और आज भी दुनिया के अनेक देश बुद्ध के जन्मस्थान होने के कारण भारत को गुरु भूमि मानते हैं।

(विभिन्न मुद्राओं में गौतम बुद्ध)

8. दुनिया में सबसे अधिक मूर्तियाँ बुद्ध की बनीं...फारस में तो बुद्ध की मूर्तियाँ इतनी बनीं...इतनी बनीं कि बुत (बुद्ध) ही मूर्ति के पर्याय बन गए...तिब्बत का क्या कहना?...वहाँ तो बुद्ध ही बुद्ध...ऐसे कि तिब्बत देश का नाम ही बोद्

(बुद्ध) पड़ गया...तिब्बत में घाटी के पत्थरों की कटाई में मजदूरों को यह बुद्ध की शैल–प्रतिमा मिली है।

हिन्दुस्तान

तिब्बत में मिली 1200 साल पुरानी बुद्ध की शैल प्रतिमा

9. बात ईसा से हजार साल पहले की है। तब इसरायल पर यहूदी राजा सोलोमन (961–922) का शासन था।

सोलोमन का जहाजी बेड़ा भारत से बंदर और तोते यरुशलम ले गया था। जहाजी बेड़े के लोगों ने बंदर और तोते के लिए जो भारत में नाम सुने थे, उन्हें वे हिब्रू में लिख लिए थे, जिसका विवरण हमें बाइबिल में मिलता है। भारत के लोग बंदर को कोफिम् और तोते को तुकुम बोलते थे।

कोफिम् वस्तुतः द्रविड़ शब्द कपि (बंदर) है और तुकुम वस्तुतः शुक (तोता) का पूर्व प्रचलित द्रविड़ रूप है। ये शब्द–रूप ईसा से हजार साल पहले जिस भारत का चित्र प्रस्तुत करते हैं, वह वैदिक समाज का नहीं है बल्कि द्रविड़ समाज का है।

10. डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी पुस्तक “वृहत्तर भारत” में लिखा है कि भारत से पूरब दिशा में सबसे पहले बौद्ध धर्म चीन पहुँचा। पाँचवीं

सदी में आचार्य बोधिधर्म चीन गए और वहाँ मार्शल आर्ट के रूप में जूडो, कराटे, कुंग-फू जैसी कलाओं को विकसित किया।

आचार्य बोधिधर्म ने अपने दिन शाओलिन गुफाओं के बौद्ध विहार में गुजारे थे। यही शाओलिन गुफाओं के बौद्ध विहार मार्शल आर्ट की जन्मस्थली मानी जाती है। मार्शल आर्ट मूलत: बौद्ध धर्म के ध्यान आधारित आत्मरक्षा की तकनीक है।

यह शाओलिन में मार्शल आर्ट का प्रशिक्षण लेते हुए बौद्ध भिक्खुओं की तस्वीर है।

(मार्शल आर्ट)

11. आप्त से, आस्था से ज्ञान प्राप्त करना वेद है। विवेक से, विवेचन-पद्धति से ज्ञान प्राप्त करना थेर है। यही थेरवाद अंग्रेजी में थ्योरी (सिद्धांत) है। इसीलिए बुद्ध की शिक्षाओं को सिद्धांत (थ्योरी) कहा जाता है।

12. चिलास एक कस्बा है। गिलगित-बलतिस्तान क्षेत्र के दिआमेर जिले में है। चिलास के बौद्ध शैल-चित्र मशहूर हैं।

पहले शैल-चित्र में बुद्ध को बेहद खूबसूरती से उकेरा गया है, दूसरे में एक स्तूप को और तीसरे में बुद्ध संग स्तूप को।

चैथा शैल-चित्र भी बुद्ध संग स्तूप है, जिस पर तीन लिपियों में लिखा हुआ है— खरोष्ठी, ब्राह्मी और सोग्दिअन।

सोग्दिअन मूलत: सग्दिआना की भाषा थी, और कभी मंचूरिया तक फैली हुई थी। ईस्वी सन् तक पश्चिमोत्तर में भी बुद्ध के विचार काफी दूर तक पहुँच चुके थे और अपनी-अपनी भाषा में लोग बुद्ध को समझ रहे थे।

1. चिलास में बुद्ध का शैल-चित्र

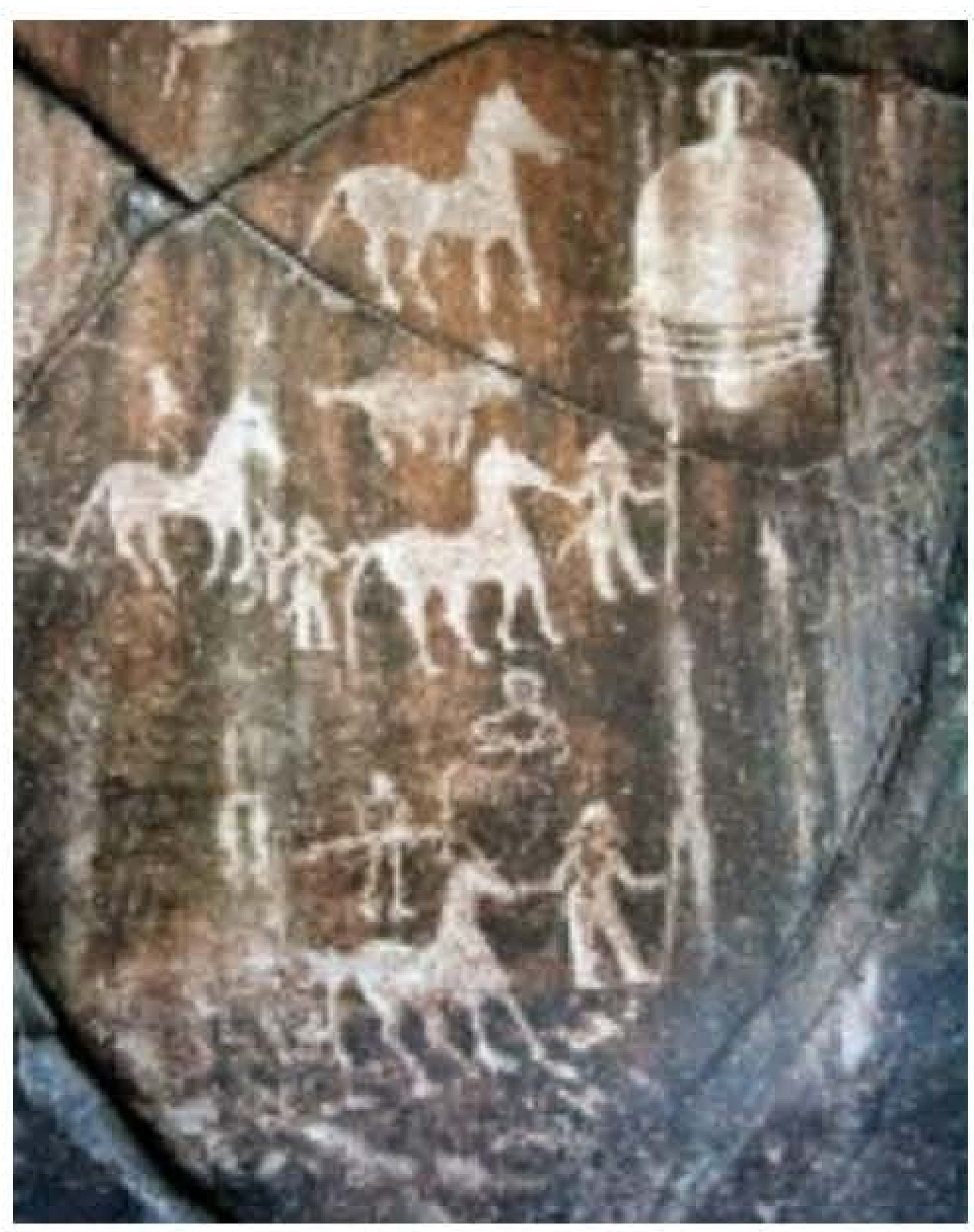

2. स्तूप का शैल-चित्र

3. बुद्ध संग स्तूप का शैल-चित्र

4. त्रिभाषीय बौद्ध शैल-चित्र

13. इत्सिंग ने अपने यात्रा-विवरण के आरंभ में लिखा है कि चीन से भारत और उसके पड़ोसी देशों में अब तक 56 बौद्ध यात्री आ चुके हैं। इत्सिंग कोई 400 और ह्वेनसांग 657 बौद्ध ग्रंथों की पांडुलिपि भारत से चीन ले गए थे। विचार कीजिए कि जब दो बौद्ध यात्री कोई 1000 बौद्ध पांडुलिपि चीन ले गए थे, तब 56 बौद्ध यात्री कितनी बौद्ध पांडुलिपि चीन ले गए होंगे?

विक्रमशिला, उदंतपुरी, तेलहाड़ा को छोड़िए, सिर्फ नालंदा विश्वविद्यालय में 3 बड़े-बड़े पुस्तकालय थे। सबसे बड़ा पुस्तकालय 9 मंजिला था। अंदाज कीजिए कि बौद्ध

विश्वविद्यालयों के पास कितनी किताबें रही होंगी? गुणभद्र, धर्मरुचि, रत्नमति, बोधिरुचि जैसे अनेक बौद्ध विद्वान चीन गए और बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। अकेले गुणभद्र ने 78 बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। सोचिए कि चीन गए दर्जनों बौद्ध विद्वानों ने कितने बौद्ध-ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया होगा?

11 वीं सदी तक बौद्ध विद्वानों का तिब्बत जाने का ताँता लगा रहा। शांतिरक्षित, आर्यदेव, कमलशील, अतिश जैसे दर्जनों बौद्ध विद्वान तिब्बत गए, बौद्ध-ग्रंथों का अनुवाद किए, लिखे भी। अकेले अतिश ने 200 बौद्ध-ग्रंथ लिखे थे। सोचिए कि तिब्बत गए दर्जनों बौद्ध विद्वानों ने कितने बौद्ध-ग्रंथ लिखे होंगे?

फाहियान भारत से पोत में लाद-लादकर क्या ले गए? राहुल सांकृत्यायन तिब्बत से खच्चरों पर लाद-लादकर क्या लाए? वही बौद्ध साहित्य, ईंट नहीं। ईंट की बात निकली है तो जानिए कि नालंदा की खुदाई में ईंटों पर भी लिखा हुआ बौद्ध साहित्य मिला है। ईंट की बात छोड़िए, राहुल सांकृत्यायन तिब्बत से सोने और चाँदी की स्याही से लिखा हुआ बौद्ध साहित्य ले आए हैं। यकीन न हो तो तस्वीर में देख लीजिए।

बहुत समृद्ध था बौद्ध साहित्य-अकूत!!!

(सोने-चाँदी की स्याही से लिखा बौद्ध साहित्य)

14. बौद्ध सभ्यता के प्रचार-प्रसार का जो काम उत्तर के मौर्यों ने किया, वही काम दक्षिण में सातवाहनों ने किया।

अशोक के सभी अभिलेख प्राकृत में हैं तो सातवाहनों के भी सभी अभिलेख प्राकृत में हैं।

उत्तर में मौर्य काल तक संस्कृत के अभिलेख नहीं मिलते हैं तो दक्षिण में भी सातवाहन काल तक संस्कृत के अभिलेख नहीं मिलते हैं।

मौर्यों ने अनेक स्तूप, चैत्य और विहार बनवाए तो सातवाहनों ने भी अनेक स्तूप, चैत्य और विहार बनवाए।

अमरावती, गोली, जगय्यपेटा, घंटसाल, भट्टीप्रोलु, नागार्जुन कोंडा जैसे स्थानों के स्तूप इन्हीं सातवाहनों के हैं।

पीतलखोरा, नासिक, भाजा, कार्ले, जुन्नार, बेदसा, कोण्डने आदि स्थानों की बौद्ध गुफाएँ, चैत्य इन्हीं सातवाहनों के नाम हैं।

फिर भी इतिहासकार हिंदू धर्म के उन्नायकों में सातवाहनों की गणना बड़े चाव से करते हैं। जबकि सातवाहनों के बनवाए एक भी मंदिर और देवी-देवता की मूर्तियाँ हमें नहीं मिलती हैं।

बताया गया है कि सातवाहन राजाओं ने बड़े-बड़े यज्ञ रचाए। आखिर जब सातवाहन राजे संस्कृत नही जानते थे तो फिर किस भाषा के मंत्र-श्लोकों से उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ रचाए थे?

(नागार्जुन कोंडा बौद्ध-स्थल)

(अमरावती स्तूप)

15. गुप्तकाल प्राचीन भारत का स्वर्ण युग नहीं था। स्वर्ण युग की परिकल्पना कलम की ताकत से इतिहासकारों द्वारा खड़ा किया गया हौआ है।

जिस अजंता की गुफाओं को घसीटकर इतिहासकार गुप्त-कला से जोड़ते हैं, उस अजंता पर न तो गुप्त राजाओं का शासन था और न संरक्षण था।

जिस नालंदा महाविहार को इतिहासकार गुप्तकालीन मानते हैं, वह वस्तुत: मौर्यकालीन है।

जिस भूमरा और नचना की इमारतें गुप्त राजाओं की देन बताई जाती है, वह वस्तुत: नागों की है।

जिस लाट पर खुद समुद्रगुप्त ने अपनी प्रशस्ति लिखवाई है, वह सम्राट अशोक का है।

जिस सुदर्शन झील पर स्कंदगुप्त का शिलापट्ट लगा है, वह सुदर्शन झील भी चंद्रगुप्त मौर्य की थी।

जिस पटना में गुप्त राजाओं का शाहीमहल था, वह शाहीमहल मौर्यों का था।

जिस गुप्तकाल में फाहियान भारत आया था, वह गुप्त जैसे राजाओं को जानता भी नहीं था।

जिस गुप्त साम्राज्य की विशालता की प्रशंसा है, वह चोल साम्राज्य से भी छोटा था।

जिस गुप्त साम्राज्य की साहित्यिक उपलब्धियों का यशोगान है, उनकी प्राय: प्रामाणिकता संदिग्ध है।

कुल मिलाकर गुप्तकाल के पास ऐसा कुछ भी नहीं बचता, जिसके बलबूते उसे प्राचीन भारत का स्वर्ण युग कहा जा सके।

16. ओस्कर वान हिनबूर और पीटर स्कीलिंग ने सोका यूनिवर्सिटी, टोक्यो में इंटरनेशनल रिसर्च इंस्टीट्यूट फार एडवांस्ड बुद्धोलाजी के लिए लिखे गए शोध-पत्र "एन इंस्क्राइब्ड कुषाण बोधिसत्व फ्राम वडनगर" में बताया है कि गुजरात स्थित वडनगर का बौद्ध मठ, जो दूसरी से सातवीं सदी का है, वह मूलतः महिला बौद्ध भिक्षु का आवास है।

यदि यह निष्कर्ष सही है तो माना जाएगा कि सिर्फ महिलाओं के लिए अलग महिला छात्रावास बनाने का श्रेय बौद्धों को है।

प्राचीन अवशेष दूसरी से 7वीं सदी के दौरान बने एक बौद्ध मठ के हैं। माना जा रहा है कि इस मठ में महिला बौद्ध भिक्षु रहती थीं। अभी तक भारत के किसी हिस्से में महिला बौद्ध भिक्षुओं के रहने और अस्तित्व के मुतल्लिक कोई ठोस पुरातत्वीय साक्ष्य नहीं मिला था। ऐसे में इस मठ का मिलना ऐतिहासिक नजरिये से बेहद अहम है। ओस्कर वॉन हिनबूर और पीटर स्कीलिंग ने टोक्यो स्थित सोका यूनिवर्सिटी में इंटरनेशनल रिसर्च इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड बुद्धोलॉजी (IRIAB) के लिए लिखे गए अपने सालाना शोधपत्र 'एन इन्स्क्राइब्ड कुषाण बोधिसत्व फ्रॉम …

(वडनगर का बौद्ध मठ)

17. बुद्ध की पहली मूर्ति चीन की है, दूसरी भारत की। पानी में डूबी पहली मूर्ति पूर्वी चीन के हांगमैन जलाशय का पानी कम होने से दिखाई पड़ी है। तस्वीर नवनीत कुशवाहा की वाल से है।

आश्चर्य कि भारत में जहाँ पानी में डूबी या माटी में धँसी बुद्ध की मूर्तियों के सिर अमूमन टूटे मिलते हैं, वही चीन वगैरह में बुद्ध की मूर्तियों के सिर सुरक्षित हैं।

(चीन की बुद्ध मूर्ति)

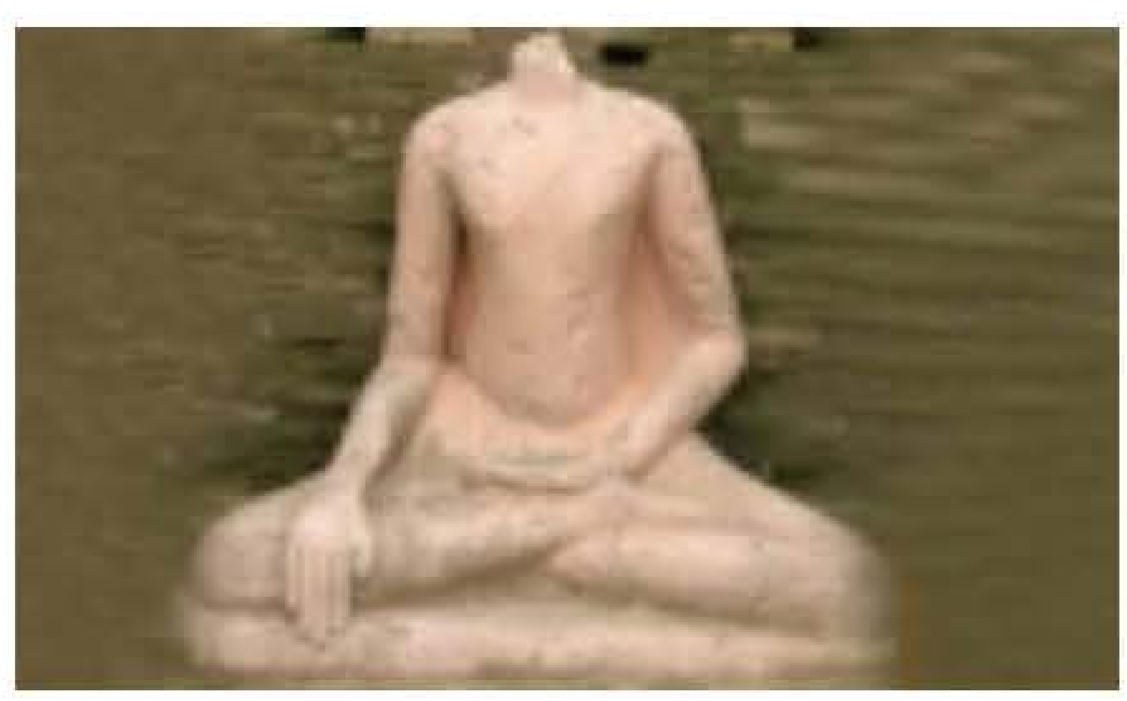

(भारत की खंडित बुद्ध मूर्ति)

18. जहाँ यज्ञ होगा, वही बलि-प्रथा होगी, जरूरी नहीं है। बलि की परंपरा केल्ट लोगों में थी, स्लाविक लोगों में थी, जर्मैनिक लोगों में थी। क्या ये सभी लोग यज्ञ कर रहे थे?

बलि की परंपरा मेसोपोटामिया में थी, फोनीशिया में थी, अफ्रीका में थी। क्या ये सभी देश यज्ञ कर रहे थे?

बलि की परंपरा मेसोपोटामिया में थी, फोनीशिया में थी, अफ्रीका में थी। क्या ये सभी देश यज्ञ कर रहे थे?

भारत के अनेक आदिम समाज में, ट्राइब्स में, यहाँ तक कि सिंधु घाटी की सभ्यता के सीलों पर बलि का दृश्यांकन है। क्या ये सभी यज्ञ कर रहे थे?

बुद्ध ने बलि का विरोध किया, जीव हिंसा का विरोध किया, इसका कतई मतलब यह नहीं है कि वे वैदिक यज्ञ का विरोध कर रहे थे। ये अग्नि-होम वाला वैदिक यज्ञ, जिसे अवेस्ता में यश्न कहा गया है, बुद्ध के बाद भारत में आया है।

बौद्ध स्थलों का परिप्रेक्ष्य

19. देउर कोठार, मध्य प्रदेश के रीवा जिले में स्थित बौद्ध स्थल है। इसकी पहली जानकारी 1982 में मिली। 1999–2000 में खुदाई हुई। खुदाई में लगभग 50 छोटे–बड़े स्तूप सामने आए।

देउर मूलत: प्राकृत का देहुर है। देहुर का संस्कृत रूप देवगृह है। देउर कोठार का अर्थ है–देवगृहों का भंडार। कोठार का अर्थ भंडार है। देव मूल रूप से बुद्ध का सूचक है जो हमें देवानंपिय में प्राप्त होता है।

देउर कोठार वाकई स्तूपों का भंडार है। यह बात खुदाई से पहले भी वहाँ की जनता जानती थी। तभी हमारे पूर्वजों ने उसका नाम देउर कोठार दिया है।

इतिहासकारों ने माना है कि अनेक स्तूप मौर्यकालीन हैं। बगल में बौद्ध भिक्षुओं के शैलाश्रय हैं। शैलाश्रय में शैलचित्र हैं। वहाँ के शैलचित्रों को इतिहासकारों ने कोई 5 हजार साल पुराना बताया है। इनमें एक शैलचित्र त्रिरत्न का भी है।

एक विशाल लाल बलुए पत्थर का स्तंभ भी मिला है। स्तंभ टुकड़ों में है। इस पर छ: पंक्तियों का बुद्ध को समर्पित अभिलेख है।

तस्वीर में स्तूपों की शृंखला है, शैलचित्र हैं, त्रिरत्न का भी शैलचित्र है, गुफाएँ हैं, स्तंभ पर अंकित अभिलेख का देवनागरी भाषांतर है और पुरातत्व विभाग का बोर्ड है। इतिहास बदल रहा है!!!

(देउर कोठर का शैल-चित्र)

(स्तूप)

(स्तूपों की शृंखला)

(त्रिरत्न संग ब्राह्मी लेख)

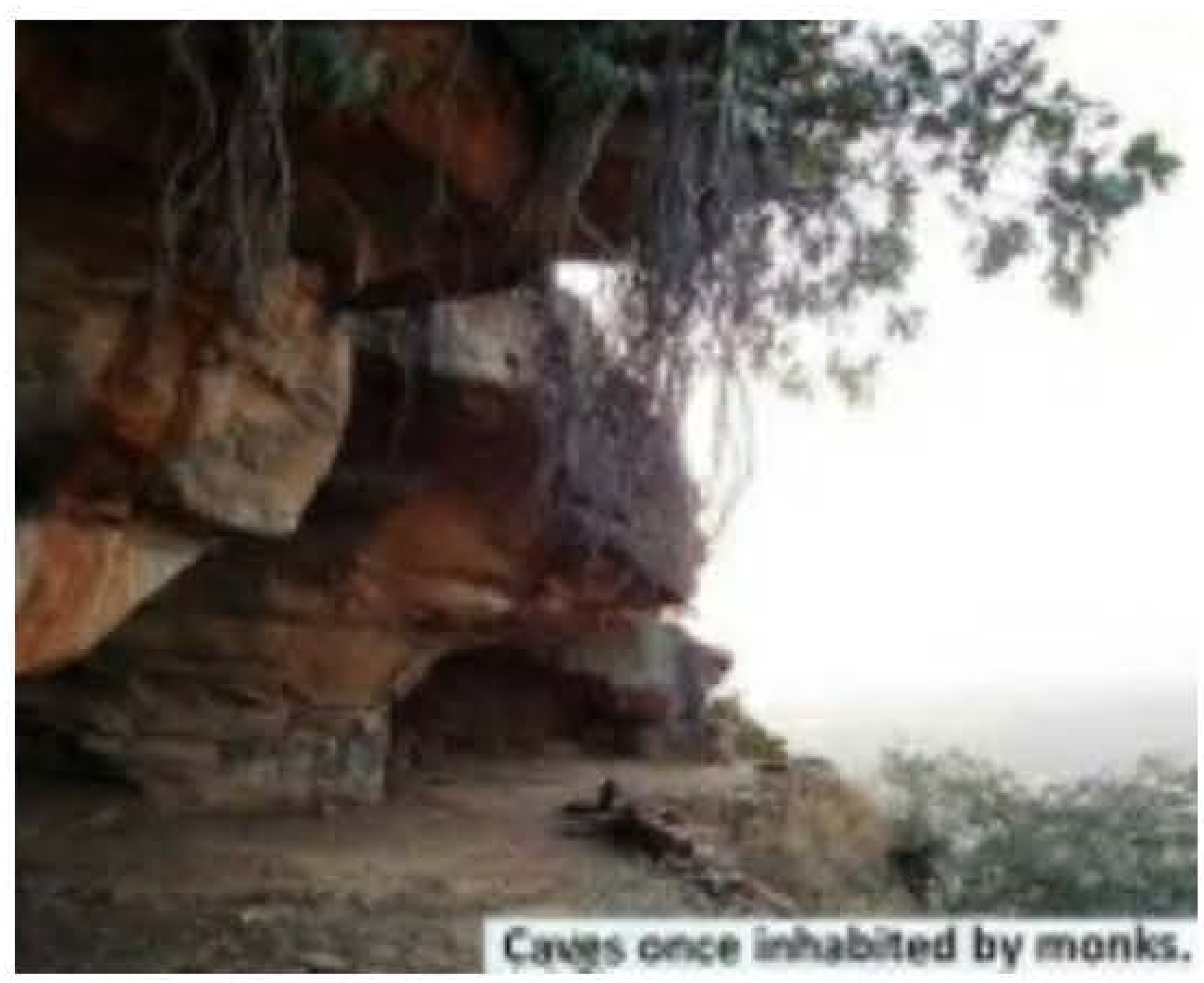

(बौद्ध गुफाएँ)

Text

भ ग व तो बु ध

उ त र मि त्रो उ त र मि त्र स अ

भ ड़ भ ड़ स आ ते वा सि ना दि नु

उ पा स क स आ ते वा सि स व ज य स व

ध म द वे न के क डी के न ब स ति ये

उ स पि तो भं भो आ आ च रि ये न क सि

Deur Kothar Inscription[1]

(शिलालेख का टेक्स्ट)

(साइन बोर्ड)

20. धोलावीरा गुजरात में है। यह सिंधु घाटी सभ्यता का महत्वपूर्ण नगर है। आप इस नगर से प्राप्त स्तूप और जलकुंड को भी देखिए और मोहनजोदड़ो के स्तूप और स्नानागार को याद कीजिए।

(धोलावीरा का स्तूप)

(मोहनजोदड़ो का स्तूप)

21. नीचे की तस्वीर में मोहनजोदड़ो का एक स्तूप है, दूसरा स्नानागार है और तीसरा आवास है। तीनों में एक जैसी ईंटों का इस्तेमाल हुआ है। अमूमन सिंधु घाटी की ईंटों की लंबाई लगभग 28 सेंमी है। जो लोग मोहनजोदड़ो के स्तूप को कुषाणकालीन बताते हैं, उन्हें जानना चाहिए कि कुषाणकालीन ईंटों की लंबाई सिंधु घाटी की ईंटों की लंबाई से कोई डेढ़ गुना अधिक थी। इसलिए यह स्तूप सिंधु घाटी सभ्यता के समय का है, न कि कुषाण काल का।

(स्तूप)

(स्नानागार)

(आवास)

22. पहली तस्वीर मोहनजोदड़ो की है। स्तूप के साथ स्नानागार है। दूसरी तस्वीर वैशाली की है। स्तूप के साथ स्नानागार है। दोनों का अभिकल्पन (इंजीनियरिंग) एक जैसा है। सिंधु घाटी सभ्यता का अनेक अभिकल्पन बौद्ध सभ्यता में आगे भी जारी रहा।

(मोहनजोदड़ो में स्तूप व स्नानागार)

(वैशाली में स्तूप व स्नानागार)

23. शिलाओं पर…ताम्र–पट्टिकाओं पर…ईंटों पर…मुद्रा–छापों पर…टिकड़ियों पर…प्राचीन काल में जिस तरह से बौद्ध सुत्त (बौद्धोपदेश) लिखे हुए मिलते हैं, उस तरह से वैदिक सूक्त (ऋचाओं का समूह) लिखे हुए नहीं मिलते हैं। क्यों…?

ईंटों पर…मुद्रा छापों पर…टिकड़ियों पर बड़े पैमाने लिखे गए बौद्ध सुत्त नालंदा के खंडहरों से प्राप्त होते हैं। इसके अध्ययन के लिए अमलानंद घोष लिखित पुस्तक "नालंदा" उपयोगी है।

नालन्दा

(पुस्तक की प्रतिलिपि)

24. प्रसिद्ध मानवशास्त्री वेरियर एल्विन ने बताया है कि नाग का अर्थ आदमी है। उन्होंने पूर्वोत्तर की भाषाओं से कई सबूत दिए हैं। ऐसे भी पालि में नाग का एक अर्थ “आदमी” है। नाग को नग (पहाड़) या नग्न (नंगा) आदि से जोड़ा जाना व्यर्थ है। नाग/नाग वंश को आदमी के अर्थ में जोड़ा जाना सही है। **s**

आरंभिक नाग राजाओं के सिक्कों पर ताड़ वृक्ष का अंकन है। मथुरा, इंदौरखेड़ा आदि स्थानों से नाग राजाओं के जो सिक्के मिले हैं, उन पर ताड़ वृक्ष का अंकन है। ताड़ वृक्ष नागों का प्रतीक चिह्न था।

इतिहासकारों ने नवनाग की व्याख्या, जो नौ नाग राजाओं के रूप में की है, वह सही नहीं है। कहीं नौ नाग राजाओं का उल्लेख भी नहीं है। नव नाग का संबंध नए या बाद के नाग राजाओं से है, जिनके स्मृति चिह्नों पर उसी ताड़ वृक्ष का अंकन मिलता है।

ताड़ पद्मावती में भी मिला है जो नागों की राजधानी थी। भूमरा में तो पूरे खंभे ही ताड़ के वृक्षों के रूप में गढ़े गए हैं। मगर भूमरा के निर्माण-कार्यों को इतिहासकारों ने गुप्त राजाओं से जोड़ दिया है। इतिहासकारों ने नागों की बनाई गई अनेक इमारतों को गुप्त राजाओं

द्वारा बनवाया मानने की भूल की है।

नागों के स्तंभ-शिखर ताड़युक्त हुआ करते थे। पद्मावती नगरी उर्फ पवाया से प्राप्त बतौर नमूना एक ताड़युक्त स्तंभ-शिखर देखिए।

(पवाया से प्राप्त ताड़युक्त स्तंभ-शिखर)

(साइन बोर्ड)

25. पहले स्तंभ की तस्वीर 1870 में जोसेफ डेविड ने ली थी। दूसरे स्तंभ की तस्वीर अवंतिका जया ने भेजी है। पहले स्तंभ की ऊँचाई कोई 30 फुट है, जबकि दूसरे की लंबाई कोई 53 फुट है। पहले स्तंभ के बारे में 1870 के दशक में कनिंघम ने लिखा है, जबकि दूसरे स्तंभ की चर्चा सर्वप्रथम बुकानन ने 1810 के दशक में की है।

पहला स्तंभ गाजीपुर (उ.प्र.) के लटिया में है। दूसरा स्तंभ जहानाबाद (बिहार) के लाठ में है। प्राकृत में स्तंभ को लाट कहा जाता है। लाट मौजूद होने के कारण ही पहले गाँव का नाम लटिया और दूसरे गाँव का नाम लाठ है।

लटिया और लाठ के स्तंभों में फर्क है। एक गोल है और दूसरा पहलदार है। पहलदार स्तंभ गुप्त और गुप्तोत्तर काल की खासियत है। गोल, चिकना और बलुए पत्थर का चमकदार स्तंभ अशोक के लाट की विशेषता है। लटिया का लाट अशोक का है जिसकी पुष्टि कनिंघम के उस बयान से भी होती है कि इसके शीर्ष पर आठ सिंहों की मूर्ति थी, जो फिलहाल नहीं है। मगर पुरातत्व विभाग ने इसे गुप्त काल का लिखा है। पुरातत्व विभाग साइनबोर्ड को संशोधित करे।

(लटिया स्तंभ)

(लाठ का लाट)

26. आप पहली तस्वीर में देख सकते हैं कि मनौती स्तूप को पुरातत्व विभाग ने शिव लिंग बता दिया है। यह वैशाली से प्राप्त आवाप्ति संख्या 238 है। विशेषकर बिहार और झारखंड क्षेत्र में ऐसे अनेक मनौती स्तूप खुदाई में मिले हैं...भदुली में, वैशाली में, कुर्किहार में! पुरातत्व विभाग को मनौती स्तूप और शिव लिंग में फर्क को समझना चाहिए।

(संग्रहालय का मनौती स्तूप)

(भदुली से प्राप्त मनौती स्तूप)

27. बेहद गर्मी थी...सुजाता के गाँव से बराबर की पहाड़ियों पर जाना था...बराबर की पहाड़ियों पर अशोक की बनवाई हुईं गुफाएँ हैं।

रास्ते की जानकारी ली...पता चला कि गया के मोरिया घाट से बेला जाना होगा...बेला सुनकर उरूबेला जैसे गाँव याद आए...मोरिया घाट से गुजरते हुए मठ मोरिया की याद आई...कैमूर जिले के मठ मोरिया में अशोक का अभिलेख है...अशोक ने यहाँ एक रात गुजारी थी...जानें क्यों इतिहासकार मौर्य कहते हैं...जनता के लिए वह मोरिय था।

आश्चर्य नहीं कि गया का मोरिया घाट अशोक के नाम पर पड़ा होगा...अशोक के बौद्ध गया जाने के प्रमाण हैं।

अशोक के समय में बराबर की पहाड़ी जवान रही होगी...अभी बिल्कुल बूढ़ी और जर्जर है...सीढ़ियों से चढ़कर गुफाओं के पास पहुँचा...गुफाएँ ग्रेनाइट की बनी हुईं, भीतर से एकदम चिकनी और चमकदार थीं।

लिपियों को देखा...हैरत हुई कि अनेक लिपियाँ अभी अनपढ़ी हैं...एक लिपि ऊपर से नीचे की ओर लिखी गई थी... दूसरी शंखाकृति में शंख लिपि थी...ये लिपियाँ सिंधु घाटी की भाँति पढ़ी नहीं जा सकी हैं।

आँखें उस मूर्ति को तलाश रही थीं जिसमें गौतम बुद्ध माँ की गोद में हैं...सीढ़ियों से उतरते दाहिने किनारे एक पेड़ के नीचे वह मूर्ति दिखाई पड़ी ...संगमरमर की बनी...बिल्कुल उपेक्षित!

(ऊपर से नीचे लिखी लिपि)

(शंख लिपि)

(माँ की गोद में बुद्ध)

(बराबर गुफा)

28. 22 जनवरी, 2018 से सीवान जिले के तितरा क्षेत्र की खुदाई आरंभ हो चुकी है। बड़े पैमाने पर बौद्ध अवशेष मिल रहे हैं। इधर बीच कृष्ण कुमार सिंह की "प्राचीन कुसीनारा का अध्ययन" नामक किताब आई है। लेखक ने दावा किया है कि यही सीवान का तितरा क्षेत्र असली कुशीनगर है, जहाँ गौतम बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था।

कनिंघम ने कुशीनगर को देवरिया जिले में स्थित कसिया से समीकृत किया है। फिलवक्त कुशीनगर उत्तर प्रदेश का जिला है। विसेंट स्मिथ कनिंघम से सहमत नहीं थे। कुशीनगर को लेकर इतिहासकारों के कई विचार हैं।

फाहियान कुशीनगर गए थे। कुशीनगर से पूरब और दक्षिण 12 योजन चलकर वैशाली पहुँचे थे। यदि फाहियान पर यकीन करें तो वैशाली से कुशीनगर की दिशा और दूरी जो उन्होंने बताई है, ठीक लगभग वही है, जहाँ तितरा क्षेत्र में अभी खुदाई चल रही है।

ऐसे में संभव है कि नए रिसर्च के मुताबिक गौतम बुद्ध का परिनिर्वाण स्थान उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले से बदलकर बिहार के सीवान जिले में स्थापित हो जाए।

इतिहास • जीरादेई प्रखंड के तितरा टोले बंगरा में पुरातत्व विभाग 22 जनवरी से करा रहा खुदाई

सीवान में मिले बौद्धकालीन संस्कृतियों के अवशेष

29. सुजाता के गाँव जाना हुआ। बौद्ध गया से पूरब निरंजना नदी के तट पर यह गाँव है। इसे बकरौर कहा जाता है। पालि साहित्य में इसे सेनानी गाँव कहा गया है। जब से इस गाँव में सुजाता का स्तूप मिला है, तब से इस गाँव का एक नया नाम सुजाता ग्राम प्रचलित हुआ है।

तस्वीर में सुजाता का स्तूप है। इसकी पुष्टि वहाँ से प्राप्त 8 वीं सदी के एक अभिलेख से होती है, जिस पर सुजाता गृह लिखा है।

सुजाता का यह स्तूप मिट्टी से ढँका हुआ था। 21 वीं सदी के प्रथम दशक में मिट्टी के टीले की खुदाई हुई, तब इतिहास में सुजाता का स्तूप भी शामिल हो गया।

सुजाता स्तूप से कोई एक मील की दूरी पर वह स्थान है, जहाँ सुजाता ने गौतम बुद्ध को खीर खिलाई थी। अभी इसे सुजाता मंदिर कहते हैं। सुजाता मंदिर से कोई 200 मीटर पूरब में एक टीला है। इस टीले को स्थानीय लोग मठ बोलते हैं। गाँव के एक कृषक से टीले की थोड़ी-सी खुदाई कराई तो मुझे विश्वास हो गया कि यह एक विशाल स्तूप है और संभवत: गौतम बुद्ध को खीर खिलाए जाने की स्मृति में बनवाया गया है। इतिहास

में विहारों के जलाए जाने पर विमर्श होते रहे हैं, मगर स्तूपों को मिट्टी से ढँकवाए जाने का विमर्श शेष है।

(बकरौर में सुजाता का स्तूप)

30. कैमूर की पहाड़ी पर बनी गौतम बुद्ध की यह पेंटिंग अनूठी है...पहले पेंटिंग को पानी से तर कीजिए...फिर कोई बीस मिनट इंतजार करिए...तब यह पेंटिंग उभरती है...मगर जितनी खूबसूरत यह पेंटिंग है, उतना ही खराब उस गाँव का नाम है...घुरहूपुर...पता नहीं सभ्यता के किस मुकाम यह नाम पड़ा होगा!

(घुरहूपुर की पहाड़ी एवं गुफा)

(घुरहूपुर का शैल चित्र)

31. मुख्यधारा के सभी इतिहासकार बताते हैं कि नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त राजा कुमारगुप्त ने की थी, जबकि सभी जानते हैं कि नागार्जुन नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य थे और जब नागार्जुन नालंदा विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे, तब कुमारगुप्त के दादा भी पैदा नहीं हुए थे।

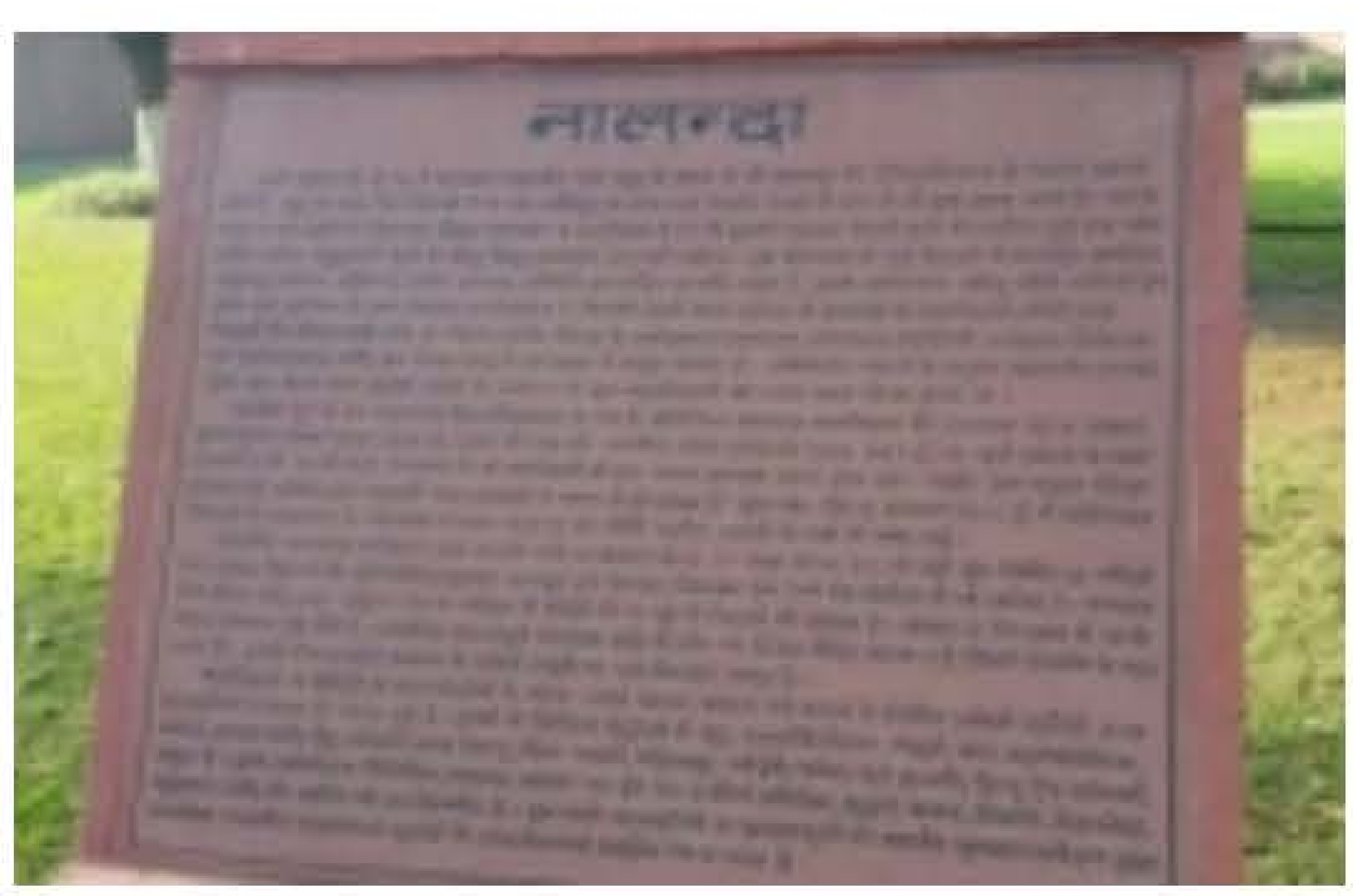

(साइन बोर्ड)

(नालंदा महाविहार)

32. पहला शैलचित्र भारत के जिला चंदौली स्थित घुरहूपुर का है। दूसरा शैलचित्र पाकिस्तान के जिला गिलगित स्थित चिलास का है। एक अजीब–सी समानता है। बुद्ध को लेकर दोनों देशों का शिल्प एक है।

(घुरहूपुर का शैल चित्र)

(चिलास का शैलचित्र)

33. बिहार के लखीसराय में लाली पहाड़ी की खुदाई में बड़े पैमाने पर मिल रहे हैं बौद्ध अवशेष...बुद्ध की मूर्तियाँ...साधना केंद्र...साधना केंद्र की इंटर कनेक्टेड कक्षाएं...दीपक...वोटिव मुहरें...वोटिव स्तूप...अनेक!

ऐसे ही नाम नहीं है बिहार!
चप्पे-चप्पे पर हैं बौद्ध विहार!

(बुद्ध की मूर्ति)

(लाली पहाड़ी के भग्नावशेष)

34. बिहार स्थित लाली पहाड़ी की बौद्ध सभ्यता बड़े पैमाने पर आग लगाए जाने से नष्ट हुई थी-बोले पुरातत्ववेत्ता

लखीसराय में भगवान बुद्ध की खंडित मूर्ति मिली

(लाली पहाड़ी से प्राप्त अवशेष)

35. रविवार था...कुर्किहार जाने की इच्छा हुई और वहाँ गया...यह दरअसल बौद्धगया से राजगीर के रास्ते का महत्वपूर्ण बौद्ध केंद्र है...कुर्किहार की पहली जानकारी 1847 में मेजर किट्टो को मिली...वे तीन दिनों तक वहाँ रुके और 10 गाड़ी बौद्ध मूर्तियों को ले गए...कुछ मूर्तियाँ नेशनल म्यूजियम, कोलकाता एवं

कई विदेशी म्यूजियम में रखी गईं...ये तमाम मूर्तियाँ कुर्किहार गाँव के गढ़ जैसे एक टीले से मिलती हैं...कनिंघम ने 1861–62 और फिर 1879–80 में कुर्किहार की यात्रा की...उन्होंने टीले की ऊँचाई 25 फुट और विस्तार 600 वर्ग फुट बताया है...1930 में वहाँ के एक स्थानीय जमींदार राय हरिप्रसाद ने इस टीले के कुछ अंशों की खुदाई कराई थी...226 मूर्तियाँ मिली थीं जिनमें 80 मूर्तियाँ अष्टधातु की थीं...फिलहाल वे सभी मूर्तियाँ पटना के संग्रहालय में सुरक्षित हैं...गाँव घूमते समय गली में, कुएं पर, दीवारों पर, दरवाजों के बाहर अनेक बौद्ध अवशेष दिखाई पड़े...कुर्किहार के देवी स्थान में अनेक बौद्ध मूर्तियाँ सिंदूर और तेल से पुती हुई दिखाई पड़ीं...कुर्किहार कोई विहार ही था...शेष खुदाई के इंतजार में!

(कुर्किहार का कुआँ)

(मनौती स्तूप)

(टीला)

(देवी स्थान में बुद्ध)

(गली में अवशेष)

36. ...और अंततोगत्वा बिहार स्थित लखीसराय के जयनगर लाली पहाड़ी की खुदाई शुरु हो गई...ताबड़तोड़ बुद्ध की प्रतिमाएँ मिल रही हैं...12 से अधिक

स्तूप उभरकर आए हैं...इतिहासकार भौंचक हैं...सेल (बौद्धों के प्रार्थना स्थल) के निचले हिस्से में बड़े पैमाने पर राख का ढेर मिल रहा है...पुरातात्विकों ने अनुमान किया है कि इस बौद्ध स्थल के नष्ट होने के पूर्व यहाँ आगजनी की बड़ी घटना हुई है...यह भी जाँच का विषय है कि आखिर बौद्ध स्थल पर इतनी भयंकर आगजनी किसने की?

(लाली पहाड़ी के बौद्ध अवशेष)